प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि

लेखक :

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक:

युग निर्माण योजना

गायत्री तपोभूमि

मथुरा

२००३ (मूल्य ३-०० रु०

समय सम्बन्धी सूचना

मनोनिग्रह साधना के चार अंग हैं । प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि । अभ्यासी को आरम्भ में एक सप्ताह तक प्रतिदिन आध घण्टे केवल प्रत्याहार का अभ्यास करना चाहिए, इसके बाद एक सप्ताह तक पन्द्रह मिनट प्रत्याहार और पन्द्रह मिनट धारणा का अभ्यास करना चाहिए । तीसरे सप्ताह आठ-आठ मिनट प्रत्याहार और धारणा तथा चौदह मिनट ध्यान । चौथे सप्ताह पाँच-पाँच मिनट प्रत्याहार, धारण, ध्यान तथा पन्द्रह मिनट समाधि । साधना में घड़ी की सहायता लेना कठिन है इसलिए एक मोटा हिसाब यह रखना चाहिए कि आधे समय में पुरानी साधनाऐं और आधे समय में नई साधना । थोड़ा बहुत ज्यादा-कम हो तो भी कुछ हर्ज नहीं ।

दूसरे मास चारों साधनाओं के लिए बराबर-बराबर समय लगाना चाहिए । आधा घण्टे से बढ़ाकर साधना का समय अधिक किया जाय तो चारों साधनों पर उसे बराबर-बराबर बढ़ा देना चाहिए । तीसरे मास तीनों साधनों के लिए आधा और समाधि के लिए आधा इस प्रकार समय विभाजन करना चाहिए । इसके पीछे प्राथमिक तीन साधनों का समय घटाते और समाधि का बढ़ाते जाना चाहिए । साधारण गृहस्थों को एक बार में एक घण्टे से अधिक ध्यान न करना चाहिए । बीच-बीच में फुरसत के वक्त थोड़ा-थोड़ा समय निकाल कर इनमें से कोई अभ्यास किया जा सकता है । जिनका सारा समय योग साधन के लिए है और उचित संयम नियम से रहते हैं, वे सुविधानुसार अधिक समय अभ्यास कर सकते हैं ।

-पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि

राजयोग-मनोनिग्रह

राजयोग के आठ अंगों में से पहले चार-यम, नियम, आसन, प्राणायाम का वर्णन पिछली पुस्तकों में स्वतंत्र रूप से किया जा चुका है । अब प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की शिक्षा इस पुस्तक में दी जा रही है ।

यम-निमय और आसन-प्राणायाम की विधि-व्यवस्था शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता के लिए है । योग शास्त्र का सुदृढ़ मन्तव्य है कि किसी महान् कार्य का सम्पादन करने से पूर्व शरीर और मन का निरोग और स्वस्थ होना आवश्यक है । पहले बाहरी स्थूल सफलता प्राप्त करनी चाहिए फिर भीतरी आत्मिक उन्नति की साधना करनी चाहिए । जो लोग शरीर को बीमार, व्यसनी, जर्जर, आलसी बनाये हुए हैं, मन को कुसंस्कारी, कुविचारी. ऊजड़, निष्ठुर एवं उजड्ड बनाये हुए हैं उनके लिए किन्हीं महत्वपूर्ण कार्यों में सफलता प्राप्त कर सकना कठिन है, खासतौर से योग साधन जैसा महान् कार्य तो और भी दुस्तर है । इसलिए योग की आधी साधना यम-नियम, आसन-प्राणायाम द्वारा शारीरिक, मानसिक स्वस्थता में निहित है । बाहरी साधना के पश्चात् भीतरी साधना का नम्बर आता है । जो लोग वाह्य व्यवहारिक जीवन में सुधार करना छोड़ देते हैं और एकदम योगी होने की सोचते हैं वे एक निरर्थक प्रयास करते हैं, उन्हें सिद्धि प्राप्त होना दुस्तर है । आँखें मूँदकर ध्यान लगाने तो बैठते हैं परन्तु व्यवहारिक जीवन को घृणित बनाये हुए हैं वे ऐसा कार्य करते हैं जैसे नीचे की चार सीढ़ियों को छोड़कर कोई एकदम उछलकर पाँवचीं सीढ़ी पर चढ़ना चाहे अथवा आरंभिक बाल कक्षाओं की पढ़ाई की उपेक्षा करके कोई बालक एकदम मिडिल की किताबें पढ़ने लगे । ऐसे प्रयास उपहासास्पद ही कहे जावेंगे । ठीक रास्ता यह है कि सबसे पूर्व और सबसे अधिक ध्यान शारीरिक और मानसिक निरोगता के ऊपर लगाया जाय और साथ ही नित्य कुछ समय मानसिक संयम के लिए लगाया जाय ।

प्रत्याहार से लेकर समाधि तक सारी साधना एक ही है । प्राचीन शास्त्रों में इस सम्पूर्ण प्रणाली के लिए "संयम" शब्द व्यवहार हुआ है । जैसे बड़े

वाक्य को सुबोध बनाने के लिए चतुर साहित्यिक लोग छोटे-छोटे वाक्यों में उसका विभाजन कर देते हैं, उसी प्रकार मन को वश में करने की प्रक्रिया जिसे 'संयम' के नाम से पुकारा जाता था। पातंजलि ऋषि ने प्रत्याहर, धारणा, ध्यान, समाधि इन चार अंगों में बाँट दी है, यह विभाजन होते हुए भी मूल तत्व एक ही है, मनोलय, आत्म-निग्रह, एकाग्रता, चित्त संयम यह एक ही बात है। शब्दों का हेर-फेर होते हुए भी अर्थ में अन्तर नहीं आता।

मनुष्य तत्व के अन्तर्गत 'मन' ही सार वस्तु है। इसी औजार के सहारे वह छोटे-बड़े कार्यों का सम्पादन करता है, पाप-पुण्य, उन्नति-अवनति, सफलता-असफलता, स्वर्ग-नरक की रचना करता है। जिस औजार के ऊपर सारा सुख-दु:ख निर्भर है, उसका ठीक प्रकार से प्रयोग करना हर व्यक्ति को आना चाहिए। परन्तु कितने लोग हैं जो अपने मन की शक्तियों का उपयोग करना जानते हैं। बन्दर के हाथ में तलवार हो, घोड़े की दुम से राज सिंहासन बँधा हो तो वे दोनों पशु उससे कुछ लाभ न उठा सकेंगे वरन् उलटे आफत में फँस जावेंगे। जिसे बन्दूक के कल-पुर्जों का ज्ञान न हो, चलना न आता हो, वह गोली-बारूद सहित बढ़िया राइफल लिए फिरे तो उससे लाभ तो कुछ न उठावेगा यदि कुछ भूल हुई तो उलटा मुसीबत में पड़ जावेगा। अनेक मनुष्यों को हम नाना प्रकार की आपत्तियों, कठिनाइयों और वेदनाओं में तड़पता हुआ देखते हैं। इनमें से अधिकांश कष्ट उनके अपने पैदा किये हुए और काल्पनिक होते हैं इन दु:खों का सारा कारण मन का कुसंस्कारी होना है। यदि मन रूपी औजार को लोग ठीक तरह प्रयोग करना जानते और कर सकते तो दुनियाँ के आधे से अधिक कष्टों का अपने आप अन्त हो जाता।

राज योग की उत्तरार्द्ध साधना, जिसका वर्णन इस पुस्तक में किया जा रहा है, इसी उद्देश्य से है कि मन के ऊपर ठीक प्रकार का काबू पाने और उसकी मर्जी के मुताबिक उपयोग कर सकने की कला हस्तगत हो जावे। मूर्ख से मूर्ख मनुष्य में इतनी पर्यास मात्रा में मानसिक शक्ति होती है कि यदि उसका उपयोग ठीक रीति से किया जा सके तो आश्चर्यजनक कार्य हो सकते हैं। योग का उद्देश्य मन को ऐसा लचकदार बनाना है कि उसे जिधर भी लगाना चाहें, इच्छानुसार लगा सकें। जिन व्यक्तियों ने संसार में बड़े-बड़े कार्य किये हैं, अपने जीवन को नियत दिशा में और नियत कार्यों में दिलचस्पी के साथ खपाया है, वे सब एक प्रकार के योगी ही थे, भले ही गेरुआ कपड़ा और कमण्डल उनके हाथ में न रहा हो। सर जेम्स वाट, एड़ीसन, मारकोनी प्रभृति, जिन

वैज्ञानिकों ने भाप तथा बिजली के असंख्य यंत्रों का निर्माण किया है, जिन्होंने प्रकृति के असंख्य गुप्त रहस्यों का पता लगाया है, उन महानुभावों को एक प्रकार का योगी ही कहा जायगा । एक ही प्रयोगशाला में, एक ही विषय का एक सी दिलचस्पी के साथ जिनका चित्त एकाग्रता पूर्वक वर्षों लगा रहा, बार-बार असफलता और निराशा आने पर भी जिनमें उदासीनता न आने पाई वरन् सब बुरी-भली परिस्थितियों में एक सी गति से विचारधारा को जुटाये रहे, यह कार्य योगियों का ही है । कोई अपनी मानसिक योग्यता को ईश्वर प्राप्ति में लगाता है, कोई भौतिक तथ्यों की प्राप्ति में, प्रयोग के मार्गदर्शक पृथक हैं, पर वस्तु एक ही है ।

देखते हैं कि लोगों का मन घड़ी भर एक जगह नहीं ठहरता, अभी यह सोचते हैं तो अभी वह सोचने लगे । अभी यह चाहते हैं तो अभी वह चाहने लगे, आज इसमें दिलचस्पी है, कल उसमें लग गये । इस प्रकार की डाँवाडोल अवस्था अधूरी दिलचस्पी, आधे मन से सोचना, आधी लगन से जुटना असफलता का प्रधान कारण है । यदि नियत लक्ष्य में सारी शक्तियों को जुटा दिया जाय तो निःसंदेह मनुष्य बड़ी से बड़ी इच्छा को पूर्ण कर सकता है ।

मन की एकाग्रता का महत्व पाठक जानते हैं । अनेक लेखों और अभिवचनों में इसकी महत्ता पढ़ और सुन चुके हैं । चाहते भी हैं कि सारी दिलचस्पी एक कार्य पर जुट कर उसमें सफलता प्राप्त करें, पर अपनी इस इच्छा को पूरा नहीं कर पाते हैं, कारण यह है कि मन को एक उजड्ड बछड़े की तरह सदा से छुट्टन छोड़ रखा गया है, उसे अच्छी तरह बढ़िया चाल चलने की कभी शिक्षा नहीं दी गई । जब घोड़े अच्छी तरह सिखाये जाते हैं, वे बढ़िया चाल चलते हैं, किन्तु छुट्टल, बिना लगाम के बछड़े को नियत दिशा में ठीक तरह से चलने की आशा सफल नहीं होती । मन की भी यही दशा है । कुसंस्कारी और असंयमी मन चाहे किधर भी उड़, जा सकता है, उसे परवाह नहीं कि आपकी अन्तरात्मा क्या चाहती है, किस लक्ष्य तक पहुँचना चाहती है ? ऐसा मन जिनके पास है, उनके लिए कोई बहुत बड़ी सफलता प्राप्त करना कठिन है । यदि गम्भीर अन्वेषण करने वाले विचारकों, खोजियों, वैज्ञानिकों, कलाकारों के पास ऐसे ही मन हों तो भला वे कोई करने लायक काम कैसे कर सकते हैं ? "मन का संयम" वह वरदान है जिससे पशु, मनुष्य बनते हैं और मनुष्य देवता बन जाते हैं । अष्टसिद्धि, नवनिद्धि इसी के अन्तर्गत हैं । भौतिक और आत्मिक जगत में जो जादू जैसे चमत्कार दिखाई पड़ते हैं, वह मनोनिग्रह

की ही करामातें हैं । गीता ने कहा है कि "मन ही मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र है ।" सचमुच निग्रहीत हुआ मन पारस है, अमृत है, कल्पवृक्ष है, सब कुछ है । जिसे यह प्राप्त है उसे सब कुछ प्राप्त है । संयमी मन में जो अद्भुत शक्तियाँ हैं, उनका ठीक प्रकार प्रयोग करके सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है ।

राजयोग जीवन को सच्चे अर्थों में जीवन बनाने की विद्या है । उसका उत्तरार्द्ध मन को संयमित करने का एक विधान है । इसके द्वारा ऐसा अभ्यास हो जाता है कि मन को जिस कार्य पर चाहे पूरी दिलचस्पी, लगन और उत्साह के साथ इस प्रकार जुटाया जा सकता है कि उसके उचटने, उकताने और भगाने का प्रसंग ही न आवे । मन को ऐसा उत्तम, उच्च कोटि का बनाकर भारतीय तत्ववेत्ता उसे आत्मा की परमात्मा की प्राप्ति में लगाते रहे हैं । भारतीय योगी अधिकांश में ब्रह्मभूत हुए हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं कि उससे सांसारिक उन्नति नहीं हो सकती । हम बार बार कह चुके हैं कि निग्रहीत मन से सब कुछ हो सकता है, जितने भी भले बुरे तथ्य इस संसार में हैं उनमें से किसी में भी इस शक्ति को लगा दिया जाय, उधर ही सफलता मिलेगी । बिजली का करेण्ट जिसमें भी चालू कर दिया जाय, वही मशीन काम करने लगेगी । पूर्व काल में जहाँ ब्रह्म परायण योगी हुए हैं, वहाँ कालनेमि, रावण, अहिरावण, मारीच, मेघनाद सरीखे खल योगी भी हुए हैं ।

इस भेद को समझ लेना आवश्यक है कि योग और ईश्वर प्राप्ति दो पृथक विषय हैं । योग एक विज्ञान है, साधन है, विद्या है, कला है, जिसके द्वारा मानसिक शक्तियों को काबू में करके उनका प्रयोग करना आता है । इस विद्या द्वारा ईश्वर प्राप्ति की जाय या भौतिक कार्य किये जाँय, यह रुचि का विषय है । योग के अन्तर्गत जो साधनाऐं इस पुस्तक में बताई जायेंगी उनमें आध्यात्म तथा ईश्वर पर झुकाव अधिक होगा क्योंकि हम इस महाविज्ञान द्वारा मनुष्य के सात्विक तत्वों को बढ़ाना चाहते हैं । परन्तु ऐसा न समझना चाहिए कि यह एक मार्ग है । भौतिक विज्ञानी एटकिंसन, टी० बीवेन्स, ओ० हष्णुहारा, मेडम ब्लेटवस्की प्रभृति पाश्चात्य योगी दूसरे ही साधन उपस्थित करते हैं । खल योगियों की तांत्रिक साधनाऐं अलग ही हैं । यहाँ तक कि हर एक योग परायण शिक्षक अपने अनुयायियों को अपने स्वतंत्र ढंग से शिक्षा देता और अभ्यास बताता है । यह सभी मार्ग मन को एकाग्र और आज्ञा पालक बनाने के हैं इसलिए विभिन्नता में भी एकता है । हम आस्तिक हैं और सत् तत्व की उन्नति में श्रद्धा रखते हैं इसलिए आध्यात्मिक पहलू को छूती हुई साधनाऐं इस पुस्तक

में बताई जावेंगी, फिर भी पाठकों को यह भेद स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि योग एक विज्ञान है, साधना है और ईश्वर प्राप्ति तथा भौतिक सुख एक उद्देश्य है । साधन और उद्देश्य कभी-कभी एक से दिखाई पड़ते हैं तो भी वास्तव में वे एक दूसरे से स्वतंत्र हैं । योगी हर व्यक्ति हो सकता है, चाहे वह गुरुए कपड़े पहनता हो या कोट पतलून ।

प्रत्याहार

किसी नियत समय में प्रतिदिन भजन, पूजन, संन्ध्या, जप, ध्यान करने की प्रत्येक धर्म में आज्ञा है । हर धर्म की इच्छा है कि किसी न किसी रूप में योग साधन के मार्ग पर प्रत्येक व्यक्ति अग्रसर हो । हिन्दू धर्म में प्रातः, सायं ईश्वर का ध्यान और जप करने का विधान विशेष रूप से है । जब दिन और रात्रि के छोर मिलते हैं ऐसी प्रातःकाल और सायंकाल की दो संध्याऐं होती हैं । इसमें सं-सम्यक् अर्थात् भले प्रकार, ध्या-ध्यान करने अर्थात् संध्या करने का आदेश प्रत्येक व्यक्ति के लिए है । प्रत्याहार, धारणा और समाधि, ध्यान की ही विशेष अवस्थाऐं हैं, ध्यान के अन्तर्गत शेष तीन अंगों का समावेश है, इस प्रकार ध्यान शब्द कहने मात्र से राजयोग के सम्पूर्ण उत्तरार्द्ध का भाव समझना चाहिए । संध्या कर्म को नित्य करना अवश्यक बताकर हमारे आचार्यों ने हर बाल-वृद्ध और गृही-बैरागी को योगाभ्यास करने का आदेश किया है । सचमुच योग साधन एक ऐसी आवश्यक शिक्षा है जिसे जल्द से जल्द आरम्भ कर देना चाहिए और मृत्यु पर्यन्त जारी रखना चाहिए ।

इस पाठ के अन्त में वह अभ्यास बताया जायगा जिसका संध्या के साथ अभ्यास करने से प्रत्याहार की पुष्टि होती है । आरम्भ में हमें पाठकों के समाने प्रत्याहार के सम्बन्ध में कुछ प्रारंभिक विवेचना करनी है । 'प्रति' और 'आहार' इन दो शब्दों के जोड़ से प्रत्याहार शब्द बना है । आहार का अर्थ है-'खाना' । प्रत्याहार का अर्थ है-'उगलना' । साँस लेना, ग्रहण करना आहार हुआ और साँस को बाहर निकालना प्रत्याहार हो गया । योग साधना में धारणा, ध्यान और समाधि के अभ्यास किये जाते हैं, इससे पूर्व प्रत्याहार की बड़ी भारी आवश्यकता है क्योंकि स्थान खाली किये बिना नई चीज रखना असम्भव है । एक कटोरे में पानी भरा हुआ है, उसे जब तक न फैला देंगे, उसमें दूध नहीं भरा जा सकेगा । पेट में पुराना मल जमा हो रहा हो तो नया भोजन खाना कठिन

है । फैंफड़ों की पुरानी हवा जब तक बाहर न निकाली जायगी, नयी वायु का प्रवेश कैसे होगा ? बुद्धिमान लोग त्याग के महत्व को समझते हैं, इसलिए विचारक लोग सदैव त्याग की शिक्षा दिया करते हैं । किसी भी धर्म कार्य को लीजिए उसमें समय, बुद्धि या पैसे का दान करने का विधान होगा । पुण्य का फल सुखदायक होता है, पर वह पुण्य तभी हो सकता है जब कुछ त्याग किया जाय । कोई प्रभावशाली औषधि देने से पूर्व वैद्य लोग हलका जुलाब देते हैं, एक दो दस्त हो जाने के बाद जब पेट साफ हो जाता है तो दवा ठीक असर करती है । होली-दिवाली जैसे बड़े त्योहार आते हैं तो घरों की सफाई बड़े जोरों से होती है । कोई उत्सव, समारोह, प्रीतिभोज होता है तो सफाई की धूम मच जाती है । आपने देखा होगा कि जब लाट साहब या बड़े अफसर किसी शहर में आते हैं तो म्यूनिसपैलिटी वाले कितनी मुस्तैदी से सड़कों को साफ कराते हैं । स्वागत का सफाई से बड़ा सम्बन्ध है । योग साधन जैसे महान् कार्य से पूर्व भी कुछ सफाई होनी चाहिए, यही सफाई प्रत्याहार है । प्रत्याहार का तात्पर्य मनोभूमि को इस योग्य बनाना है कि उस पर खड़े होकर इस महान् सम्पदा का स्वागत किया जा सके ।

मनुष्य के मन में बुरे-भले, उचित-अनुचित, ग्राह्य-त्याज्य सभी प्रकार के संस्कार भरे पड़े रहते हैं । इनमें से कुछ नये होते हैं, कुछ बहुत पुराने । कुछ अपने आप पैदा किये हुए होते हैं, कुछ दूसरों के द्वारा डाले हुए तथा पैतृक होते हैं । इन सब का भली प्रकार निरीक्षण करना चाहिए, एक तीक्ष्ण दृष्टि वाले निष्पक्ष एवं कठोर समालोचक की निग्रह से अपने समस्त गुणों, स्वभावों, विश्वासों और विचारों को अच्छी तरह टटोल-टटोल कर देखना चाहिए कि इनमें से कौन उचित एवं आवश्यक है तथा कौन अनुचित एवं अनावश्यक है । यह परीक्षण यदि अपने आप ठीक प्रकार न हो सके तो किसी विश्वासी एवं सच्चरित्र मनोविज्ञानवेत्ता से इस कार्य में सहायता लेनी चाहिए । ऐसी सहायता लेने की प्रायः दस में से नौ व्यक्तियों को जरूरत पड़ती है । कारण यह है कि जितनी आसानी से दूसरों की समालोचना की जा सकती है, उतनी आसानी से अपनी नहीं होती, स्वभावतः मनुष्य अपने साथ पक्षपात किया करता है । अपनी बुरी वस्तुओं के लिए भी मोह-ममता की अधिकता रहती है, इसलिए किसी दूसरे श्रद्धास्पद पुरुष की सहायता से अपना परीक्षण भली प्रकार कराया जा सकता है । ऐसे सहायक को योग शास्त्र की भाषा में 'गुरु' कहते हैं । यदि कोई विश्वासपात्र गुरु मिल जाय तो उसकी सहायता लेने का भरसक प्रयत्न करना

चाहिए। कनफूँका, अविवेकी गुरुओं से तो सदा सर्प की तरह बचना चाहिए, ऐसे लोगों के चक्कर में पड़कर, गुरुदीक्षा की लकीर पीटने से तो बिना गुरु के रहना कहीं अधिक अच्छा है।

सहायक के सहयोग से अथवा स्वतंत्र रूप से अपने स्वभाव, विश्वास और विचारों का परीक्षण करना चाहिए। उनमें से जो अनावश्यक हों, उन्हें छोड़ देना चाहिए और जो अच्छे हों, उन्हें सुरक्षित रखना चाहिए। कुछ नये स्वभाव और विश्वासों को ग्रहण करने की भी आवश्यकता होती है। अपने में जो कमियाँ हों उन्हें पूरा करने के लिए गुणों को हृदयमंग करना चाहिए। सफाई आवश्यक है, स्वागत के लिए सफाई होनी ही चाहिए। अपने अन्दर योग से उत्पन्न हुआ आत्मिक तेज धारण करने के लिए सड़े-गले, फटे-पुराने, गन्दे-सन्दे, अनावश्यक एवं असामयिक विचारों को तिलांजलि देना अत्यन्त आवश्यक है। योग शास्त्र कहता है कि अपने कुविचारों को दूर करो, कुसंस्कारों को मार भगाओ, दु:स्वभावों को पीछे धकेल दो, दुर्गुणों को निकाल बाहर करो, इसी सफाई का नाम प्रत्याहार है।

इस अध्याय के आरम्भ में ही कहा गया है कि खाने को आहार और उगलने को प्रत्याहार कहते हैं। जिन चीजों को उगला जाता है, उनसे घृणा की जाती है, गंदा समझा जाता है, अस्पृश्य माना जाता है। वमन, विष्ठा, मूत्र, थूक, नाक, कीचड़, पसीना, रज, वीर्य आदि जो भी वस्तु शरीर से बाहर निकल जाती है, अस्पृश्य बन जाती है, उनसे हम स्वभावत: घृणा करते हैं, जहाँ तक बन पड़ता है, उन्हें फिर नहीं छूते, छूना ही पड़े तो जल आदि से शुद्धता करते हैं। यह बात मानव स्वभाव में बड़ी दृढ़ता के साथ जुड़ी हुई है कि वह त्याज्य वस्तुओं से घृणा करता है। यदि घृणा न रहे या कम हो जाय तो उन वस्तुओं से दूर रहने की प्रकृति शिथिल हो जायगी। जिसे जिस वस्तु से जितनी अधिक घृणा है, वह उससे उतना ही दूर रहेगा, बचता रहेगा। घृणा के अभाव में बचने का उतना निश्चय नहीं रहता। प्रत्याहार किये हुए दुर्गुणों से उसी प्रकार घृणा करना आवश्यक है जैसे कि वमन, विष्ठा आदि से करते हैं। उगलने का कुछ प्रयोजन न रहा यदि उससे घृणा न हुई, क्योंकि घृणा के अभाव में उस बुरी बात को फिर किसी समय ग्रहण किया जा सकता है।

"थूककर चाटना" इस मुहावरे को बातचीत के सिलसिले में वहाँ प्रयोग किया जाता है, जहाँ एक बार कोई व्यक्ति किसी वस्तु का त्याग करके फिर उसे ग्रहण करता है। यह मुहावरा अत्यन्त घृणास्पद घटनाओं के साथ

प्रयोग किया जाता है, क्योंकि यह मुहावरा स्वयं बहुत घृणित है । वैसे मद्य, माँस आदि बहुत सी घृणित और पापपूर्ण पदार्थ मनुष्य खाता रहता है परन्तु इन्हें चाटना कहकर किसी को चिढ़ाया नहीं जाता । इस कहावत में थूक को चाटना इसलिए घृणित नहीं बताया गया है कि वह अखाद्य है । चेचक का टीका पशुओं के पीप से लगाया जाता है, वह भी तो वैसा ही अखाद्य है जिसे सब लोग शरीर में प्रवेश कराते हैं । यहाँ तो थूक को घृणित इसलिए ठहराया गया है कि वह उगली हुई वस्तु है । निस्संदेह उगली हुई वस्तु से घृणा की ही जानी चाहिए, मानव स्वभाव उससे घृणा करने की प्रबल प्रेरणा किया करता है ।

ईश्वर ने एक भी गुण हमें ऐसा नहीं दिया है जो अनावश्यक हो । उसने हमारे शरीर और मन में वही अंग रखे हैं जिनकी जीवन निर्वाह के लिए अत्यन्त आवश्यकता है । घृणा, द्वेष जैसे स्वभाव भी अपने स्थान पर अत्युत्तम है, बुराई तब होती है, जब उनका दुरुपयोग किया जाता है । जिन बातों को आप अपने अन्दर नहीं देखना चाहते, जिन बातों से अपने को बचाना चाहते हैं, उनसे घृणा कीजिए, द्वेष कीजिए । चहारदीवारी खड़ी करके बाग में घुसने से जंगली पशुओं को रोका जाता है, आप अपनी मानसिक वाटिका को बुराईयों से बचाना चाहते हैं तो घृणा और द्वेष की दीवारें खड़ी कर दीजिए, इसके बिना उनका रुकना कठिन है । बुराइयों से, पापों से, दुर्गुणों से, दुष्कर्मों से घृणा कीजिए, खूब घृणा कीजिए, अत्यन्त तीव्र घृणा कीजिए, यह तीव्रता इतनी होनी चाहिए कि उन बुराइयों को सदा आप शत्रु के रूप से देखें, जब भी उनका ध्यान आवे यही समझें कि यह हमारे जानी दुश्मन हैं, ऐसे दुश्मन जिनसे कभी भी, किसी प्रकार भी संधि नहीं हो सकती ।

भ्रम में मत पड़िये, यहाँ बुराइयों से घृणा करना सिखाया जा रहा है, न कि व्यक्तियों से । आप व्यक्ति और बुराई के बीच के अन्तर को भली प्रकार समझ लीजिए । बुराई सदा बुराई ही रहेगी परन्तु व्यक्ति बदल सकता है, सुधर सकता है । व्यक्तियों से घृणा या द्वेष करने से अशांति, कलह, मनोमालिन्य बढ़ते हैं, अपना मन भारी होता है और अनुचित मार्ग पर कदम उठते हैं । किसी आदमी से आप को द्वेष हो तो उससे बदला लेने, उसे मजा चखाने, नीचा दिखाने, नुकसान पहुँचाने का प्रयत्न किया जायगा, इसके लिए अनुचित मार्गों का भी अवलम्बन किया जायगा । जिस प्रकार आपको उस व्यक्ति से द्वेष किसी अनुचित व्यवहार के कारण हुआ है, उसी प्रकार उसे भी आपको अनुचित व्यवहार के लिए द्वेष होगा । यह द्वेष दोनों ओर बढ़ता जायगा, दोनों ही पक्ष एक

दूसरे पर आक्रमण करेंगे और क्लेश बढ़ेगा, मनों की मलिनता बढ़ेगी, किन्तु यदि व्यक्ति के लिए द्वेष नहीं है, बुराई के लिए द्वेष है तो बुरे मनुष्य की बुराई छुड़ाने का आपका प्रयत्न सफल होगा । यह प्रयत्न 'उचित' मार्ग के आधार पर ही होंगे और उचित काम करने से मानसिक पवित्रता स्थिर रहेगी । आपके विरोधी को भी ईश्वर ने थोड़ी बहुत बुद्धि दी है वह देखेंगे कि आप अनीति के खिलाफ लड़ रहे हैं, व्यक्तिगत रूप से नहीं तो वह आपके साथ पूरे बल से द्वेष न कर सकेगा । अधूरा द्वेष पंगु होता है, उससे उतना अधिक अहित नहीं हो सकता । किसी दिन उसे सुबुद्धि प्राप्त हुई तो आप की कर्तव्यनिष्ठा से प्रभावित होकर वह आपके चरणों पर गिर सकता है, किन्तु यदि व्यक्तिगत द्वेष के कारण अनुचित मार्ग भी ग्रहण किये गये हैं तो परास्त होकर भी वह जन्म भर आप से घृणा करेगा और विरोधी बना रहेगा ।

आध्यात्म शास्त्र कहता है कि आत्मा परमात्मा का ही अंश है, जीव ईश्वर का पुत्र है । सूर्य पवित्र है, उसकी किरणें भी पवित्र हैं । ईश्वर के अंश जीव भी स्वभावतः अपने पिता के समान निर्मल है । आत्मा स्वयं अपने आप में पापी नहीं है वह तो सत् स्वरूप है । पाप और बुराइयाँ माया की खिलवाड़ें हैं । इन खिलवाड़ों का ही पर्दाफाश करना है । बीमारी को नष्ट-भ्रष्ट कर डालना है और बीमार को बचाना है । बीमारी दूर करने के लिए बीमार को भी मार डालने वाला वैद्य बुद्धिमान नहीं कहा जा सकता । यदि आप बुराई देखकर बुरे आदमी को भी नष्ट करना चाहते हैं तो बिलकुल उस नादान वैद्य की ही नकल करते हैं । किसी आत्मा से घृणा मत कीजिए, किन्तु बुराइयों के जानी दुश्मन रहिए । दुर्गुण, दुर्भाव, दुःस्वभाव, कुविचार, कुसंस्कार यह मनुष्य के दुश्मन हैं, आप इनसे पूरी-पूरी दुश्मनी ठाने रहिए । इन्हें अपने घर में मत घुसने दीजिए, अपने मित्रों के घर में मत घुसने दीजिए, अपने परिचित या अपरिचित सजातियों के यहाँ प्रवेश मत करने दीजिए, हर जगह इनका बहिष्कार कराइये, जहाँ यह दीख पड़ें, वहीं इनसे लड़ पड़िये, दूसरों को लड़ा दीजिए, बेखबरों को खबर कर दीजिए कि-"असली दुश्मन यह हैं, इन्हें पहिचानो, बचो, लड़ो और मार भगाओ ।"

धर्मग्रन्थों में मनुष्य जाति के एक सबसे बड़े दुश्मन का उल्लेख है । इस्लाम और ईसाई धर्म में उसे 'शैतान' कहा गया है । हिंदू धर्म में उसका नाम 'असुर' है । यह शैतान ईश्वर का विरोधी और मनुष्य जाति को बहकावे में डालकर नरक की ओर ले जाने वाला है । इस शैतान या असुर से घृणा एवं द्वेष

करने के लिए विविध प्रकार से शास्त्रों में आदेश दिये गये हैं । यह शैतान कोई भूत-पलीत या अदृश्य जीव नहीं वरन् हर समय हर घड़ी साथ रहने वाला एक तत्व है इसे कठोर भाषा में "पाप" और हलकी भाषा में "अज्ञान" कहा जाता है । योग शास्त्र कहता है कि हर एक साधक पाप से घोर घृणा करे, उसे अछूत समझे, अपने को उसका स्पर्श होने से भली प्रकार बचावे । जहाँ भी पाप की लीला दिखाई पड़े, वहीं से घृणा की लपलपाती हुई नंगी तलवार उसकी गरदन पर बरस पड़े । एक क्षण के लिए भी इस दुश्मन से संधि नहीं होनी चाहिए । अज्ञान के पंजे से छूटकर ज्ञान प्राप्त करने का जब भी, जहाँ भी, जितना भी अवसर आवे उसे अविलम्ब ग्रहण किया जाय । क्षत्रिय लोग अपने दुश्मन को परास्त करने में अपने सर्वस्व की बाजी लगा देते थे । योग शास्त्र कहता है कि हे बहादुर अभ्यासियो ! उठो !! अपने अन्दर से और दूसरों के अन्दर से पाप तथा अज्ञानरूपी शत्रुओं को मार भगाओ और घोर संग्राम करो, अपने सर्वस्व की बाजी लगा दो ।

प्रत्याहार की अन्तर्ध्वनि यह है कि-"बुराइयों को उगल दो, बुरे विचारों को उगल दो, ढूँढ़-ढूँढ़ कर एकोंएक अनावश्यक तथा असामयिक स्वभाव तथा विश्वासों को झाड़ू लेकर बुहार डालो । कूड़े-कचरे को घर से बाहर फेंक देते हैं और फिर उसे घर में नहीं आने देते, इसी प्रकार कुसंस्कारों का परित्याग कर दो, इनसे सारा सम्बन्ध छोड़ दो और फिर भूलकर भी उन्हें ग्रहण न करो । त्यागे हुए मल, मूत्र या वमन के प्रति जैसे घृणा होती है, वैसे ही पापों से घृणा करो ।" योग साधन के पथिकों को यह ध्वनि भली प्रकार कान खोलकर सुन लेनी और हृदयंगम कर लेनी चाहिए ।

रबड़ की गेंद जितने जोर से खींच कर जमीन में मारी जाती है, उतने ही जोर से वह ऊपर को उछलती है । जिससे जितनी घृणा की जाती है, उसकी विरोधी भावनाऐं उतनी ही प्रबलता से उभरती हैं । जो गंदगी से जितनी घृणा करेगा, सफाई से उसे उतना ही प्रेम होगा, इसी प्रकार जिस व्यक्ति के, जिस जाति के, जिस सिद्धांत के, जिस कार्य के विरुद्ध जितनी अधिक घृणा होगी, उससे बचने, उसे नष्ट करने के भाव उतने ही प्रबल होंगे । जो पाप से द्वेष करता है, निश्चय ही उसके मन में पुण्य संचय के लिए बहुत उत्साह होगा, जो अज्ञान से कुढ़ता है, उसे ज्ञान की उन्नति में अधिक रुचि होगी । झूला झुलाने में इधर से जितना धक्का दिया जाता है, उधर से भी उतने ही जोर से वापिसी आती है । बुराइयों से क्रोध करने वाले ही अच्छाइयों का संचय और प्रसार कर सकते

हैं । जो मटियल सांप की तरह मुर्दा मन के हैं, उनके लिए सब धान बाईस पंसेरी रहेंगे । उपेक्षा, निराशा, आलस्य, अनुत्साह उन्हें घेरे रहेंगे, ऐसे लोगों को 'जीवित मृतक' कहा जाता है । पृथ्वी माता का बोझ बढ़ाने वाले, अन्न को टट्टी करने वाले यह मुर्दा मनुष्य जीवन को निरर्थक करते हुए जैसे-तैसे अपनी इह लीला समाप्त कर जाते हैं ।

आध्यात्म विद्या का आविष्कार इसलिए नहीं हुआ है कि वह इस प्रकार के भू-भार मुर्दों की संख्या बढ़ावे, उसका उद्देश्य सतेज, सक्षम, क्रिया कुशल, उत्साही एवं सच्चे अर्थों में मनुष्यता धारण करने वाले मानवों की वृद्धि करना है इसलिए मानसिक जगत की शुद्धि करने, मनोवृत्तियों को सुसंस्कृत बनाने, मन को वश में करने के अभ्यासों से पूर्व यह आवश्यक समझा गया है कि उच्च गुणों की ओर चित्त को प्रवृत्त किया जाय । स्थिरता और शांति, श्रेष्ठता में ही हैं, तामसिक, अधम मार्ग पर चलने से तो मन की अशांति एवं अस्थिरता कई गुनी बढ़ जाती है ऐसी दशा में उसे एकाग्र करना कठिन होता है । सतोगुण की वृद्धि तभी हो सकती है, जब तमोगुण से घृणा की जावे । ऊँची दीवार उठाने के लिए कहीं दूसरी जगह गड्ढा होगा, जहाँ की मिट्टी से ईंट बनेंगी वहाँ की जमीन नीची हो जायगी । पुण्यात्मा बनने के लिए पापों को हटाना आवश्यक है यह तभी हो सकता है जब उनसे घृणा हो, छोड़ देने की, अलग हटाने की प्रबल भावना हो, इन्हीं सब तथ्यों पर विचार करते हुए प्रत्याहार को मनोनिग्रह की साधना में सर्वप्रथम स्थान दिया गया है । कुछ ग्रहण करने से पहले त्याग करने की परम्परा को ही अपनाया गया है ।

मन में कोई अनावश्यक विचार मत आने दीजिए । रोकने और उगलने का अभ्यास कीजिए । बेकार और अवांछनीय विचारों को मस्तिष्क में प्रवेश मत होने दीजिए, वे बाहर ही रुक जाने चाहिए, मन को नियत दिशा में ही दिलचस्पी होनी चाहिए, इधर-उधर के प्रलोभनों और चित्त को उचटाने वाले संस्मरणों को अपने पास मत फटकने दीजिए । पुराने जमा किये हुए स्वभाव और विश्वासों को मार भगाइये और फिर उनके लिए सदा को किवाड़ें बन्द कर दीजिए-यही प्रत्याहार है । न तो त्याज्य विचार मन में आने चाहिए और न निषिद्ध कर्म शरीर से होने चाहिए । यह तभी हो सकता है जब त्याज्य वस्तुओं के प्रति शत्रु दृष्टि रहे । यह शत्रु दृष्टि वास्तव में मित्रों को बढ़ाने वाली है । घृणा और द्वेष का यही सदुपयोग है, इसीलिए परमात्मा ने यह वृत्तियाँ मनुष्य को दी हैं । योग साधकों को प्रत्याहार की सीढ़ी

पर कदम रखते हुए घृणा और द्वेष को सतेज करना चाहिए और इन प्रबल हथियार के द्वारा आध्यात्म मार्ग के सारे झाड़-झंखाड़ों को काट कर साफ कर देना चाहिए ।

अभ्यास

(१) प्रतिदिन प्रात:काल अथवा सायंकाल एकान्त स्थान में शांत चित्त से नेत्र मूँदकर किसी सरल आसन से बैठिए, शरीर और मन को शिथिल कर दीजिए । सब ओर से चित्त हटाकर एकाग्र कीजिए । अब ऐसा ध्यान कीजिए कि निखिल आकाश में केवल मैं ही एक हूँ और दूसरी कोई भौतिक वस्तु कहीं नहीं है । कुछ समय अपने एकाकीपन पर भली प्रकार ध्यान जमाइये ।

(२) ''नीले आकाश में अकेला मैं''-यह ध्यान ज़ब ठीक तरह जमने लगे तब अपनी आत्मा में से एक तेज-पुंज निकल कर अपने चारों ओर घेरे की तरह फैल जाते हुए अनुभव कीजिए । एक चक्रव्यूह, घेरा, बाड़ा, सूर्य के समान तेज वाला अपने चारों ओर फैला हुआ है । इस दुर्ग के अन्दर मैं सब प्रकार सुरक्षित बैठा हुआ हूँ । इस ध्यान की दृढ़ता के साथ-साथ दिव्य नेत्रों से ऐसा भान होना चाहिए कि प्रकाश की बहुत ऊँची, असीम ऊँची दीवारें अपने चारों ओर खड़ी हुई हैं, यह इतनी सुदृढ़ हैं कि इन्हें बेधकर कोई भीतर नहीं आ सकता ।

(३) जो विचार, संस्कार, विश्वास आपने त्याज्य ठहरा रखे हैं, उन्हें उस अग्नि सी जाज्वल्यमान दीवार से बाहर खड़ा हुआ देखिये और अनुभव कीजिए कि अब वे किसी भी प्रकार आप तक नहीं पहुँच सकते । इन दुष्टों की पहुँच अपने तक किसी भी प्रकार नहीं हो सकती ।

(४) तेज पुंज अभेद्य दुर्ग के बीच में स्फटिक मणि से जगमगाते हुए आसन पर अपने को बैठा हुआ अनुभव कीजिए और इन मंत्रों का जप कीजिए ।

-मैंने सब कुविचारों और कुसंस्कारों का सर्वथा त्याग कर दिया है ।

-मुझ तक वे अब किसी भी प्रकार नहीं पहुँच सकते । मैं अब उन्हें कदापि स्पर्श न करूँगा ।

-मैं निषिद्ध कर्म और विचारों से घोर घृणा करता हूँ, उन्हें अपना प्रधान शत्रु मानता हूँ ।

-मैं कभी भी इन शत्रुओं से संधि न करूँगा, इनके विरुद्ध सदा ही युद्ध जारी रखूँगा ।

-मैं पवित्र आत्मा हूँ, इसलिए पवित्र तत्वों को ही ग्रहण करूँगा । अपवित्र, अधम तत्वों को मैंने पूर्ण रूप से बहिष्कृत कर दिया है ।

धारणा

विद्वान् बक्सटन कहा करते थे कि-मैंने अपनी वृद्धावस्था तक मनुष्य तत्व के बारे में बहुत अधिक अनुभव एकत्रित किये हैं । उनमें यह अनुभव सर्वोपरि है कि-''विश्वासों के आधार पर जीवन का स्थूल रूप तैयार होता है ।'' महापुरुष चार्ल्स डिकिन्स का कथन है कि जिस मनुष्य की जैसी आन्तरिक भावनाएँ होंगी, उसकी सारी बाह्य रूपरेखा वैसी ही बन जायगी । महर्षि वशिष्ठ का मत है कि बीज की जाति का ही पौधा उगता है और संकल्पों की जाति की परिस्थितियाँ पैदा होती हैं । गीता कहती है-''यो यच्छ्रद्ध स एव स'' अर्थात् जो जैसी श्रद्धा करता है, वह वैसा ही हो जाता है । सचमुच विश्वासों के आधार पर ही मनुष्य अपने लिए सुख दु:ख, उन्नति-अवनति, बन्ध-मोक्ष की भूमिका तैयार करता है । जो सोचता है कि मैं शिव हूँ, वह शिव है, जिसका विश्वास है कि मैं जीव हूँ, वह जीव है । अपने को दीन-दु:खी, दरिद्र, अयोग्य, असमर्थ, अभागा, अशक्त मानते हैं, वे वास्तव में वैसे ही हैं किन्तु जिनका विश्वास है कि हम अपने भाग्य के निर्माता हैं, ईश्वर के अंश हैं, सर्वशक्तिमान आत्मा हैं, वे निस्संदेही वैसे ही हैं । जैसा फूल होगा, वैसी ही उसकी गन्ध होगी, जैसे विश्वास होंगे, वैसे ही परिस्थितियाँ मिल जायेंगी ।

एक सिंह का बच्चा भेड़ों के झुण्ड में रहता था, वह अपने को भेड़ ही समझता था और वैसे ही घास चरता था । जब दूसरे सिंह ने उसे सचेत किया तब कहीं उसे आत्म बोध हुआ । भृंग नाम की मक्खी छोटे कीड़े को पकड़ ले जाती है, उसे अपने घर में रखती है, कीड़ा हर समय भृंग की आवाज सुनता है, उसी का रूप देखता है, धीरे-धीरे उसके चित्त में भृंग का रूप जम जाता है, तदनुसार उसके शारीरिक अंगों में परिवर्तन शुरू हो जाता है और कुछ ही समय में वह कीड़ा हूबहू भृंग बन जाता है । तितली जिस प्रकार के फूलों पर रहती है, प्राय: उन्हीं फूलों के रंग की हो जाती है । संगति के प्रभाव से आदमी के गुण, कर्म, स्वभाव बदल जाते हैं । एक मनुष्य बहुत सदाचारी है किन्तु दुष्टों की

संगति में अधिक दिन रहे तो उसी ढाँचे में ढल जायगा, पहले जो बातें उसे बुरी लगती थीं, वही अच्छी लगने लगेंगी । अंग्रेजी भाषा में मन और मैन (मनुष्य) एक ही प्रकार लिखे जाते हैं । मैन *(Man)* शब्द को आप मन भी पढ़ सकते हैं और मैन (मनुष्य) भी । इससे प्रतीत होता है कि मन और मनुष्य में कुछ अन्तर नहीं । जिसका जैसा मन है, वह मनुष्य भी उसी प्रकार का होगा ।

राजयोग की छठवीं सीढ़ी "धारणा" का तात्पर्य उस प्रकार के विश्वासों को धारण करने से हैं जिनके द्वारा मनोवांछित स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है । भौतिक वस्तुऐं कुपात्रों को भी मिल जाती हैं, परन्तु आत्मिक सम्पदाओं में एक भी ऐसी नहीं है जो अनाधिकारी को मिल सके । प्रसन्नता, निरोगता, सुख, शांति, संतोष, तृप्ति, आनन्द प्रभृति आत्मिक संपदाऐं हैं, जिन्हें प्राप्त करने के लिए मनुष्य भौतिक वस्तुऐं ढूँढ़ता रहता है, इन्द्रिय भोग तथा धन-सम्पदा द्वारा तृप्ति, प्रसन्नता और शांति को उपलब्ध करने का प्रयत्न किया जाता है, पर हाथ कुछ नहीं आती । जैसे जैसे धन जमा होता है, भोगों को भोगते हैं, वैसे ही वैसे अग्नि में घृत डालने से बढ़ती हुई ज्वाला की भांति तृष्णा, चिन्ता, व्याकुलता, झुँझलाहट, अशांति बढ़ती जाती है । वास्तव में आत्मिक संपदाऐं भौतिक वस्तुओं से खरीदी नहीं जा सकती, वह तो आत्मिक प्रयत्नों से ही प्राप्त हो सकती हैं । यदि अपने विचार, विश्वास, स्वभाव श्रेष्ठता की ओर झुके हुए होंगे, उच्च श्रेणी के सात्विक विषयों में दिलचस्पी होगी तो शारीरिक और मानसिक यंत्रों में उसी कार्य प्रणाली का संचार होगा जिसके द्वारा वे मानसिक संपदाऐं प्राप्त की जा सकती हैं जिनको प्राप्त करने के लिए व्याकुल होकर सारा संसार उलटे-सीधे कार्य कर रहा है ।

आपने अपने मन में यदि सात्विकता धारण कर रखी है तो आपको सज्जनोचित गुण, कर्म, स्वभाव तथा वाह्य अवसर प्राप्त होंगे । यदि तामसिकता को मन में भर रखा है, तमोगुण को अपना रखा है तो दुष्ट-दुर्जनों जैसे गुण, कर्म, स्वभाव आप में प्रकट होंगे और बाहरी ठाठ-बाट, रंग-ढंग, साज-सामान उसी तरह का इकट्ठा हो जायगा । पाठकों को हजार बार यह बात हृदयंगम कर लेना चाहिए कि मनुष्य भाग्य का गुलाम नहीं, भाग्य का निर्माता है । वह आत्मिक तथा सांसारिक परिस्थितियाँ अपने बाहुबल से उपार्जित करता है । कोई भी दूसरी शक्ति उसे हानि-लाभ नहीं पहुँचा सकती । अपने आप ही अपने लिए वह आम, बबूल बोता है और खुद ही उनके परिणामों से हँसता-रोता है । आध्यात्म शास्त्र इस स्वयं सत्य सिद्धांत को पूर्ण रूप से स्वीकार करता है,

इसलिए उसने साधकों को आदेश किया है कि वैसा बीज बोओ जैसे फल खाना चाहते हो । मन में उस प्रकार के संस्कारों को धारण करो जिससे मनोकामना पूरी हो सके । यही "धारणा" का अभिप्राय है ।

"प्रत्याहार" के अन्तर्गत आपको घृणा करना सिखाया गया है, कुविचार और कुसंस्कारों को उगल देने की शिक्षा दी गई है । मन को स्वच्छ एवं सुसंस्कृत करने की शिक्षा का वह पूर्वार्द्ध है । बर्तन को खाली कर देने के बाद उसमें कुछ भरना भी होगा । खेत में से झाड़-झंखाड़ उखाड़ देने के उपरान्त उसमें अच्छा बीज बोया भी जाता है । सफाई के बाद सजावट भी चाहिए । फोड़े को चीर देने के बाद उस पर मरहम भी लगेगा । खर्च करने के बाद कुछ कमाया भी जायगा । दोनों पलड़े बराबर कर लेने पर ही काँटे का संतुलन ठीक होगा । प्रत्याहार अधूरा है यदि उसके बाद धारणा का प्रयत्न न किया जाय । कुविचारों का परित्याग करके उनके स्थान पर उत्तम विचारों की प्रतिष्ठा होनी चाहिए । महर्षि पातंजलि ने इस प्रकरण में एक बहुत ही उत्तम उपाय बताया है, वह है-'प्रति पक्षी भावना ।'

जो बातें आपने त्याज्य ठहराई हैं, उनके विरोधी कार्यों को करने में तत्पर रहना चाहिए । शरीर और मन में कोई शत्रु प्रवेश कर रहा हो तो तुरंत ही किसी मित्र को उसका मुकाबला करने के लिए अड़ा दीजिए । मन में यदि क्रोध के भाव आ रहे हों तो उनके विरोधी प्रेम के भाव उत्पन्न कीजिए, कामुकता की तरंगें उठ रही हों तो प्रबल प्रयत्न के साथ ब्रह्मचर्य का मनन आरम्भ कीजिए । इसी प्रकार हिंसा का मुकाबला दया से, निराशा का आशा से, कंजूसी का त्याग से, पाखण्ड का सत्य से, क्रूरता का करुणा से मुकाबला करना चाहिए । जब आप देखें कि कोई कुविचार उठ रहा है, कुसंस्कार जागृत हो रहा है तो तुरंत ही सावधान हो जाइए और उसे भगा देने के लिए उत्तम भावों को सतेज कीजिए । एक म्यान में दो तलवारें नहीं आ सकतीं, प्रकाश के साथ अंधेरा नहीं रह सकता, जब आप सात्विक भावनाओं से अपने अन्तःकरण को भरने लगेंगे तो स्वभावतः दुर्भाव अपने आप पलायन करने लगेंगे । शरीर में जब तामस बढ़ रहा हो तो सत् के चाकू से उसे खुरच डालिए । आलस्य को परिश्रम से, अजीर्ण को उपवास से, चटोरेपन को नियमबद्धता से, इन्द्रिय लिप्सा को स्वाध्याय से दबाया जा सकता है । प्रतिपक्षी भावना को प्रोत्साहन देने में जरा भी विलम्ब न करना चाहिए । युद्ध-नीति यह है कि शत्रु को आगे बढ़ने का जरा भी मौका न मिलना चाहिए, यदि वह आगे बढ़ आया, घर में घुस आया तो

निकाल बाहर करने में बहुत कठिनाई पड़ेगी । मन या शरीर में तामस तत्वों को देखते ही उनका मुकाबला करने के लिए तत्क्षण तत्पर हो जाना चाहिए, इसमें जरा भी विलम्ब न करना चाहिए । वरना जितनी देर शत्रुओं को ठहरने का मौका मिलेगा, उतनी ही मजबूती से वे पैर जमा लेंगे । प्रतिपक्षी भावनाऐं लड़ाकू सेना की तरह सदैव कमर कसे तैयार खड़ी रहें, जैसे ही दुश्मन को देखें कि टूट पड़ें और ऐसी गोलीबारी करें कि दुश्मन को भागते ही बने ।

मन को स्वच्छ एवं सुसंस्कृत करने की शिक्षा का उत्तरार्द्ध 'धारणा' में निहित है । अच्छे, आवश्यक, सामयिक एवं उपयोगी गुणों को चुन-चुन कर अपने अन्दर धारण करना चाहिए । उनकी महत्ता पर विचार करना चाहिए, उनके महात्म्य को रुचि एवं विस्तार के साथ मनन करना चाहिए । इन गुणों को ग्रहण कर लेने के उपरान्त अपनी जो उच्च स्थिति जो जायगी उसका सुनहरा चित्र आशा भरी दृष्टि से देखना चाहिए । उन्हीं गुणों को प्राप्त करने के उपायों को सोचना चाहिए । इस प्रकार के लोगों से मित्रता और घनिष्ठता बढ़ाने का उद्योग करना चाहिए । जब भी अवसर मिले, साहस के साथ रुकावटों को तोड़ते हुए अपने विश्वासों को चरितार्थ करने का प्रयत्न करना चाहिए । स्मरण, चिन्तन, कीर्तन इसी दिशा में हो, मन, वचन और कर्म से इसी दिशा में कदम आगे बढ़े । अपने प्रिय गुण, स्वभावों को अधिकाधिक मात्रा में धारण करने की लगन लगी रहे । रामायण कहती है कि ''जेहि कर जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलत न कछु संदेहू ॥'' जिसका जिस पर सच्चा स्नेह है, उसे वह वस्तु मिलने में कुछ संदेह नहीं है । यदि आपने मन में यह ठान, ठान ली है कि हम अपने अन्तः करण को स्वच्छ, निर्मल एवं पवित्र बनावेंगे तो विश्वास रखिए आप बहुत शीघ्र वैसे ही बन जावेंगे, आप में अनेक उच्च गुणों की भरमार होने में अधिक समय न लगेगा । धारणा का ऐसा ही महात्म्य है । जिसका जैसा विश्वास है, वह वैसा ही बन जाता है ।

बुराइयों से बचने और अच्छाइयों की तरफ बढ़ने का मार्ग यह है कि आप अपने को श्रेष्ठ, सद्‌गुणी, पवित्र, पुण्यात्मा, विवेकवान् अनुभव करें । बेशक आप में कुछ दोष हैं, दुर्गुण हैं, दुःस्वभाव हैं, पिछले दिनों बहुत पाप बन चुके हैं, अब भी बनते रहते हैं और शायद अभी कुछ समय तक आगे भी बनते रहेंगे, इस कडुए सत्य को स्वीकार करने से इनकार नहीं किया जा सकता । पर इसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि आप में अनेक सद्‌गुण, सत् स्वभाव, सद्‌भाव मौजूद हैं, बहुत से शुभ कर्म पीछे कर चुके हैं, अब कर रहे हैं और

आगे करते रहेंगे । मनुष्य का सुर दुर्लभ शरीर पापात्मा एवं पतित नारकीय कीड़ों को नहीं मिल सकता है । सृष्टि का यह सर्वोच्च पद सुयोग्य अधिकारियों को ही दिया जाता है । हम घोषणा करते हैं कि आप अधिकारी है, पुण्यात्मा हैं, सद्‌गुणी हैं । हम शपथपूर्वक कहते हैं कि आप श्रेष्ठ हैं । आप हम पर विश्वास कीजिए, हमारी बात का भरोसा कीजिए, बिना किसी हिचकिचाहट के अपनी श्रेष्ठता और महत्ता स्वीकार करने के लिए तैयार हूजिए । थोड़ी सी कालिमा सूर्य और चन्द्रमा में भी मौजूद है, थोड़ा दोष होना कोई ऐसी भयंकर बात नहीं है कि आप उससे घबरा कर अपनी सारी अच्छाइयों पर हरताल फेर दें । आप परमात्मा के पवित्र अंश-आत्मा है, अपने पिता के समान ही श्रेष्ठ, उच्च और शक्तिशाली हैं । अपनी महानता का तिरष्कार मत कीजिए वरन् उसे भली प्रकार विश्वासपूर्वक अपने अन्दर धारण कीजिए । राजयोग की छठवीं मंजिल से साधकों को वह आदेश दिया जा रहा है कि-''अपनी श्रेष्ठता स्वीकार करो ! विश्वास करो कि हम परमात्मा के पवित्र अंश है । अनुभव करो कि हमारे अन्दर योग्यता और शक्ति की कुछ भी कमी नहीं है । भली आदतें, ताकतें और लियाकतें हमारे अन्दर काफी तादाद में हैं, उन्हें हम मनचाही मात्रा में बढ़ा सकते हैं, बढ़ा रहे हैं और बढ़ाकर रहेंगे ।'' यह आदेश जितनी मात्रा में आप ग्रहण कर लेते हैं समझिये कि उतनी ही मात्रा में धारणा का अभ्यास कर लिया ।

अभ्यास

(१) प्रतिदिन प्रात:काल अथवा सायंकाल एकान्त स्थान में शांत चित्त से नेत्र बन्द करके पद्मासन से बैठिए, शरीर और मन को शिथिल कर दीजिए । सब ओर से चित्त हटाकर एकाग्र कीजिए ।

(२) ध्यान मग्न होकर अपने शरीर का स्वरूप इस प्रकार देखिंए मानो कोई दूसरा उसे देख रहा हो अथवा आप स्वयं ही अपने शरीर का प्रतिविम्ब किसी बड़े दर्पण में देख रहे हों ।

(३) बहुत ध्यानपूर्वक सामने खड़े हुए अपने शरीर का अवलोकन कीजिए । हर एक अंग पर ध्यान जमाइए और उस अंग को स्वस्थ, बलवान, सतेज अनुभव कीजिए । उनके अन्दर पर्याप्त शक्ति है, पूर्ण स्वस्थता है, रक्त संचार ठीक प्रकार हो रहा है, स्फूर्ति छलकी पड़ रही है, तेज जगमगा रहा है ।

(४) यह भावना हाथ, पाँव, नाक, कान, आँख, पेट, छाती आदि अंग-प्रत्यंगों में करने के बाद कुछ सारे शरीर का एक साथ ध्यान देखिए और अनुभव कीजिए कि वह सब प्रकार से स्वस्थ, सुन्दर, सशक्त एवं सतेज है, एक अच्छे शरीर के सभी गुण उसमें विद्यमान हैं ।

(५) अब मन का ध्यान कीजिए, मस्तिष्क स्थान में तीव्र बुद्धि, स्मरण शक्ति, चतुरता, ज्ञान, विवेक आदि मस्तिष्क शक्तियों की प्रचुरता का ध्यान कीजिए और हृदय स्थान में सत्य, प्रेम, न्याय, दया, साहस, त्याग, उत्साह, कर्मनिष्ठा आदि सद्गुणों की बाहुल्यता देखिए । मस्तिष्क में बौद्धिक और हृदय में आत्मिक गुणों की अधिकता देखिए ।

(६) प्रतिदिन अधिक सतेज अधिक स्पष्ट और अधिक गहरा ध्यान करने का प्रयत्न कीजिए । शरीर और मन की स्वस्थता एवं सबलता की धारणा ध्यान द्वारा साधन के समय में तथा शेष समय में अधिक से अधिक मात्रा में धारण करनी चाहिए ।

(७) ध्यान के साथ साथ मन ही मन इन मंत्रों का जप करते जाइए-

-मैं स्वस्थता और सबलता का केन्द्र हूँ ।

-मैं शक्ति और तेजपुंज हूँ ।

-मैं अपने भाग्य का स्वामी हूँ ।

-मैं पवित्रता और श्रेष्ठता से परिपूर्ण हूँ ।

-मैं सुसम्पन्न शरीर, मस्तिष्क और अन्त:करण धारण किए हुए हूँ ।

ध्यान

प्रत्याहार और धारणा प्रकरण में हमने कुविचारों और कुसंस्कारों को छोड़ने तथा अपनी श्रेष्ठता को स्वीकार करने एवं सद्भावों को धारण करने की शिक्षा दी है । हमें आध्यात्मिक शिक्षण के साथ उच्च सात्विक गुणों का विकास करना अभीष्ट है । इसीलिए शिक्षा का तारतम्य उस ढंग से बाँधा गया है । दूसरे लोग जिन्हें दूसरे उद्देश्यों की पूर्ति करनी है, इस शिक्षा को दूसरे ढंग से देते हैं । जिस काम में मनोयोग की आवश्यकता है, दिलचस्पी के साथ, ध्यानपूर्वक, एकाग्रता के साथ जो भी कार्य करना होगा, उसमें प्रत्याहार और धारणा की जरूरत होगी । मान लीजिए कि आपको एक लेख लिखना है, यह कार्य आरम्भ करने के साथ दो प्रकार की तैयारी करनी पड़ेगी । एक तो यह कि उस

लेख से असम्बद्ध, असामयिक विचारों का त्याग करना पड़ेगा । यदि नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प मन में आते रहें, तरह-तरह की उधेड़-बुन उत्पन्न होती रहे तो लेख की सामग्री जुट न सकेगी, इसलिए उस समय अनावश्यक और विघ्नकारक विचारों को बाहर ही रोक देना पड़ेगा-यह प्रत्याहार हुआ । लेख आरम्भ करते हुए उसी तारतम्य की विचारधारा में विचरण करना होगा, उसी प्रसंग की गहराई में उतरकर तद्विषयक प्रसंगों को ढूँढ़ना और स्मरण करना होगा । यह स्मरण और अन्वेषण जितना अधिक एवं स्पष्ट होगा, उतना ही अच्छा लेख लिखा जा सकेगा । जो लेखक इधर-उधर की बातों को दूर हटाकर अपने विषय में तल्लीन हो जाता है, सारी बुद्धि को उसी में सराबोर कर देता है, उसी की प्रतिभा चमकती है, उसी के लेख ऊँचे दर्जे के होते हैं ।

यही बात उन सब कामों के ऊपर लागू होती है, जिनमें ध्यान देने की अधिक आवश्यकता है । जीवन के अधिकांश कार्यों के साथ सोचने-विचारने का बहुत अधिक संबंध रहता है, इन सबमें सफलता प्राप्त करने के लिए प्रत्याहार और धारणा की आवश्यकता है । यदि आप नाई हैं और किसी की हजामत बनाते समय जगह-जगह चित्त दौड़ाते हैं, आधे मन से काम करते हैं तो हजामत अच्छी न बनेगी, कहीं उस्तरा फिसलेगा, कहीं बाल छूटेंगे । किन्तु यदि सारा ध्यान उसी पर लगा दें, उसी विषय पर सोंचे तो पिछले अनुभव याद हो जावेंगे, तरह-तरह की नई सूझें उत्पन्न होंगी, हजामत बढ़िया बनेगी और अपनी होशियारी दिन-दिन बढ़ती जायगी । प्रत्याहार और धारणा की ऐसी ही महिमा है । यह कला हर मनुष्य को सीखनी चाहिए चाहे वह कुछ भी काम क्यों न करता हो । चोर भी यदि इनका प्रयोग करे तो अच्छी चोरी कर सकता है । केवल योगियों को ही नहीं भोगियों को भी मनोनिग्रह की आवश्यकता है । अपने अपने ढंग से वे करते भी हैं, क्योंकि इस साधना के बिना किसी भी कार्य में कहने लायक सफलता नहीं मिल सकती ।

योग विद्या द्वारा आत्म शुद्धि के पथ पर, परमपद प्राप्ति के मार्ग पर हम अपने पाठकों को अग्रसर कर रहे हैं, इसलिए प्रत्याहार और धारणा की शिक्षा इसी मर्यादा में दे चुके हैं, परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि यही एक तरीका है । तथ्य एक है पर उद्देश्य भिन्नता के कारण तरीके अनेक हैं और हो सकते हैं । इसी प्रकार ध्यान भी है । ध्यान भी अनेक प्रकार से होते हैं और हो सकते हैं, पर हम अपने पाठकों को उसी आधार पर अवलम्बन करने की सलाह देते हैं, जो हमें अभीष्ट हैं ।

प्रत्याहार और धारणा से मन इतना संयमित हो जाता है कि उसे नियत विषय पर बिना अधिक कठिनाई के लगाया जा सके । कुम्हार बर्तन बनाने से पहले मिट्टी को बड़ी मेहनत के साथ गूँथता है और जब वह लोच पर आ जाती है तब बर्तन बनाना शुरू करता है । मनोनिग्रह का विषय भी ऐसा ही है । प्रत्याहार और धारणा से मन जब लोच पर आ जाता है तब ध्यान और समाधि की ओर आसानी के साथ कदम बढ़ने लगते हैं । राजयोग की सातवीं सीढ़ी ''ध्यान'' है । नियत विषय में अधिकाधिक मनोयाग के साथ जुट जाना, तन्मय हो जाना, सारी सुधि-बुधि भुलाकर उसी में निमग्न हो जाना ध्यान है ।

एक बार गुरु द्रोणाचार्य ने वाण विद्या सिखाते हुए अपने शिष्यों को एक चिड़िया का निशाना मारने का आदेश किया । वे यह देखना चाहते थे कि देखें लड़के लक्ष्य बेध में सफलता प्राप्त करने के रहस्य को अभी समझे हैं या नहीं । एक एक करके सब शिष्यों को बुलाया जाने लगा । लक्ष्य बेध के लिए शिष्य जब वाण खींचता तो गुरुजी पूछते कि-अब तुम्हें क्या-क्या दिखाई पड़ता है ? शिष्य कहते-''पेड़, उसकी टहनियाँ, पत्ते और चिड़िया ।'' गुरु उनके धनुष-वाण रखवा लेते और अनुत्तीर्ण ठहरा देते । सभी लड़कों ने प्राय: ऐसे ही उत्तर दिये, उन्हें चिड़िया के साथ-साथ दूसरी-दूसरी चीजें भी दिखाई पड़ती थीं । अन्त में अर्जुन की बारी आई, उसने कहा-गुरुजी ! चिड़िया की गरदन के सिवाय मुझे और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता । गुरु ने कहा-तुम उत्तीर्ण हुए बेटा । अन्य सब शिष्यों को एकत्रित करके द्रोणाचार्य ने समझाया कि-''लक्ष्य बेध का गुप्त रहस्य अपने उद्देश्य में इस प्रकार तन्मय हो जाना है कि लक्ष्य के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई न पड़े ।''

द्रोणाचार्य ने जो उपदेश अपने शिष्यों को दिया था, वह हर एक पुरुषार्थी को हृदयंगम कर लेना चाहिए । कोई भी महत्वपूर्ण कार्य तब हो सकता है जब करने वाले की उसमें तन्मयता हो । संसार में जिन महापुरुषों ने जो महान् कार्य किये हैं, वे एकाग्रता द्वारा ही हो सके हैं । उन्होंने सदा अपने लक्ष्य का ध्यान रखा और केवल लक्ष्य का ही ध्यान रखा, तभी वे विघ्न-बाधाओं से टकाराते हुए अपने मंजिल-मकसूद तक बढ़ते चले गये । डाल-डाल पर उड़ने वाले और पात-पात पर डोलने वाले लोगों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे कुछ कहने लायक सफलता प्राप्त करके दिखा सकेंगे । छोटे आतिशी शीशे के द्वारा सूर्य की किरणें एक स्थान पर एकत्रित करने से अग्नि उत्पन्न हो जाती है, किन्तु वैसे उतने घेरे की बिखरी हुई किरणें कुछ अधिक गर्मी उत्पन्न नहीं करतीं ।

मानसिक शक्तियाँ भी यदि छितरी हुई, बिखरी हुई इधर-उधर फैली रहें तो उनसे कुछ अधिक कार्य नहीं हो सकता किन्तु यदि वे एकत्रित हो जाँय तो आतिशी शीशे की तरह अग्नि उत्पन्न कर सकती हैं । अधिक योग्यता वाले लापरवाह की बजाय कम योग्यता वाला सावधान मनुष्य अधिक काम कर सकता है । सारा मनोयोग लगाकर किये हुए कार्य तो सफल होते ही हैं, साथ में अपनी योग्यता भी बढ़ती जाती है ।

इन्हीं सब बातों का विचार करते हुए आध्यात्म शिक्षा के अन्तर्गत अनेक प्रकार के ध्यानों का विधान किया गया है । ध्यान से रहित कोई भी साधना नहीं है, सीधी साधनाओं में किसी न किसी प्रकार ध्यान करना पड़ता है । साकार-निराकार सभी उपासनाऐं ध्यान से परिपूर्ण हैं । राम, कृष्ण, शिव, हनुमान, दुर्गा, गणेश आदि देवताओं की भक्ति करने वाले उनकी मूर्तियों का ध्यान करते हैं । विराट् स्वरूप की भक्ति करने वाले निखिल ब्रह्माण्डों में चराचर व्यापी परमात्मा का ध्यान करते हैं । अपने अपने प्रिय इष्ट का ध्यान करने की सब जगह आवश्यकता अनुभव की जाती है । हम अपनी पुस्तक "ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?" के अन्तर्गत यह बता चुके हैं कि यह देवता एक ध्येय प्रतिमाऐं हैं । मनुष्य जैसा बनना चाहता है, उसी आदर्श का एक चित्र बनाकर उसका ध्यान करता रहता है फलस्वरूप वह कीट-भृंग की तरह वैसा ही बन जाता है, जैसा कि उसने अपना इष्ट देवता नियत किया था । राजयोग के अन्तर्गत 'ध्यान' की साधना इसी उद्देश्य की पूर्ति करती है, मनुष्य जो कुछ चाहता है, उस आकांक्षा का एक दृश्य चित्र बनाकर उसको मानसिक चेतना के सम्मुख रखने के लिए कहा जाता है ताकि ध्यान करते-करते तदाकार अवस्था प्राप्त होने लगे ।

एक जड़ बुद्धि का व्यक्ति किसी योगी के पास गया और प्रार्थना की कि मुझे योगाभ्यास कराइए । योगी ने उसे श्रीकृष्ण के चित्र का ध्यान करने को कहा । कुछ देर प्रयत्न करने के बाद वह मनुष्य बोला कि गुरुजी यह तो बहुत कठिन है, मुझसे श्रीकृष्ण जी का ध्यान नहीं बन पड़ता । तब गुरु ने और भी कई सुगम से ध्यान बताये परन्तु वह हर एक में असफल रहा, किसी भी प्रतिमा पर वह चित्त को न जमा सका । तब योगी ने उससे पूछा-अच्छा यह बताओ कि तुम्हें सबसे प्रिय क्या वस्तु है ? उसने कहा-मेरी भैंस मुझे सबसे प्यारी लगती है । मुद्दतों मैने उसे चराया है, बहुत दिनों साथ-साथ रहे हैं, खूब उसका दूध-घी खाया है, अपनी भैंस से अधिक और कोई वस्तु मुझे प्रिय नहीं है ।

गुरुजी ने कहा-अच्छा, तब ठीक है, तुम उस एकान्त कोठरी में जाकर भैंस का ध्यान करो । वह व्यक्ति भैंस का ध्यान करने लगा । कुछ समय बाद गुरुजी ने पूछा-कहो बच्चा ! क्या हाल है ? उसने कहा-गुरुजी अब मैं भैंस ही हो गया हूँ, मुझे बिलकुल यही मालूम होता है कि मैं भैंस हूँ । तब गुरुजी ने संतोष की सांस ली और कहा-अब तुम्हें ध्यान करना आ गया । पीछे उसे इष्टदेव का ध्यान करके योगाभ्यास सिखाया गया ।

इस कथा के दो निष्कर्ष हैं एक यह कि प्रिय विषय में ध्यान लगता है, दूसरा यह कि ध्यान करते-करते मनुष्य तदाकार हो जाता है । धारणा द्वारा नियत लक्ष्य में रुचि उत्पन्न की जाती है, उसे भैंस के समान प्रिय बनाया जाता है और ध्यान द्वारा तन्मय होने का प्रयत्न किया जाता है । उपास्य के ढाँचे में उपासक भी ढल जाता है । जैसा खिलौना बनाना होता है, वैसे ही साँचे में गीली मिट्टी को भर देते हैं, इसी तरह जीवन को जिस प्रकार बनाना होता है, उसी प्रकार की ध्यान-साधना करनी होती है । उपास्य और उपासक का घना सम्बन्ध है । जो जैसे विचार करता है, वह वैसा बन जाता है अथवा यों कहना चाहिए कि जो जैसा बनना चाहता है, उसे वैसे विचार करने चाहिए ।

ध्यान का यही अभिप्राय है कि साधक को लक्ष्य के समीप ला खड़ा किया जाय । हम अपने अनुयायियों को विकास की ओर, उन्नति की ओर प्रोत्साहित करना चाहते हैं, इसलिए वैसा ही ध्यान करने की सलाह देंगे । शारीरिक, मानसिक और आत्मिक क्षेत्रों में से आपकी जिसमें अधिक दिलचस्पी हो, आपको जिसमें उन्नति करना अधिक इष्ट हो, उसका निर्णय कीजिए । जो जिस कक्षा का है, उसे अपने विषय में अधिक रुचि होगी और यह निश्चित है कि रुचिकर विषय में ही भली प्रकार ध्यान जमता है । अपने इष्ट विषय के अनुसार इष्ट देवता नियुक्त कीजिए । शारीरिक उन्नति के लिए हनुमान, मानसिक उन्नति के लिए कृष्ण या राम, आत्मिक उन्नति के लिए शंकर को इष्ट बनाना चाहिए । यदि स्त्री शरीर में रुचि है तो बल के लिए दुर्गा, वैभव के लिए लक्ष्मी और ज्ञान के लिए सरस्वती का इष्ट ठीक है । सत्, रज, तम-तीन गुणों में से जिसकी अपने में प्रधानता होगी, उसी के अनुसार इन देवी-देवताओं में से इष्ट का चुनाव रुचेगा ।

इस स्थान पर एक बड़ी भारी गड़बड़ी की गुंजायश है, उससे हम आपको सावधान किये देते हैं । उपरोक्त पंक्तियों में जिन देवताओं को इष्ट नियुक्त करने को कहा गया है, उन्हीं के नाम के ऐतिहासिक महापुरुष भी हुए

हैं । उनका जो जीवन-चरित्र धार्मिक पुस्तकों में मिलता है, उनसे उनके गुण और दोष दोनों ही प्रकट होते हैं जैसा कि अपूर्ण मनुष्य में प्राय: हुआ करते हैं । उन आदरणीय महापुरुषों का तथा इष्ट देवों का नाम एक ही है इसलिए उन दोनों को जोड़कर एक कर देने की गलती हो सकती है । जो साधक इस गलती को करते हैं, वे उन महापुरुषों के ढाँचे में ढलते हैं, यदि उनमें चोरी, व्यभिचार, विलास, मायाचार आदि दोष रहे होंगे तो वे साधक के भी पल्ले बँधेंगे, इसलिए सावधान किया गया है कि इष्टदेव, विशुद्ध इष्टदेव है । वह एक 'ध्येय प्रतिमा' है, आदर्श की मूर्ति है । उसका रज-वीर्य के संयोग से कभी जन्म नहीं हुआ है और न उसका कोई जीवन-चरित्र है ।

जिधर बढ़ना आपको पसन्द हो, शारीरिक उन्नति में बल, मानसिक उन्नति में सम्पदा और आत्मिक उन्नति में ज्ञान प्राप्त होता है । जो अभीष्ट हो, उसका आदर्श चित्त के सामने रखने के लिए उसकी 'ध्येय प्रतिमा'-'आदर्श मूर्ति' नियुक्त कर लीजिए । बल के लिए हनुमान या दुर्गा, सम्पदा के लिए विष्णु (राम, कृष्ण) या लक्ष्मी, ज्ञान के लिए शंकर (गणेश) या सरस्वती का चुनाव होना चाहिए । इष्ट देव का एक बड़ा सा सुन्दर चित्र या मूर्ति घर के किसी ऐसे पवित्र स्थान में स्थापित करनी चाहिए जहाँ बार-बार दृष्टि पड़ती रहे । एक समय में एक मनुष्य का एक ही इष्टदेव होना चाहिए ।

अभ्यास

(१) प्रतिदिन प्रात:काल अथवा सायंकाल एकान्त स्थान में शांत चित्त से नेत्र बन्द करके पद्मासन से बैठिए, शरीर और मन को शिथिल कर दीजिए । सब ओर से चित्त हटाकर एकाग्र कीजिए ।

(२) इष्टदेव के नियत चित्र का ध्यान कीजिए । उस मनोहर छवि को मानस नेत्रों से एकाग्रतापूर्वक देखते रहिए ।

(३) वैज्ञानिक सिद्धांत है कि मन एक जगह कुछ सैकिण्ड से अधिक नहीं ठहर सकता । इसलिए उसे इष्टदेव की शारीरिक तथा मानसिक स्थिति का निरीक्षण करने के लिए चलने-फिरने दीजिए ।

आपकी कल्पना इष्टदेव का सौन्दर्य, वैभव तथा स्वभाव जितना उच्चकोटि का अनुभव कर सकती है, करने दीजिए । उच्चतम सौन्दर्य, वैभव तथा स्वभाव से इष्टदेव को सुसज्जित करते रहिए ।

(५) इस इष्टदेव में अपने को आत्मसात् करने की भावना करिए । पानी में घुलने पर नमक भी पानी हो जाता है, इस प्रकार अपनी सत्ता को इष्टदेव में घोलकर अपने को तदाकार हुआ देखिए ।

(६) तदाकारता इतनी बढ़ती जानी चाहिए कि आपको वर्तमान शरीर का विस्मरण हो जाय और अपना स्वरूप इष्टदेव में ही भाषित हो । ध्यान में ऐसी एकाग्रता होनी चाहिए, इष्टदेव के अतिरिक्त और कोई वस्तु यहाँ तक कि अपना व्यक्तित्व भी दिखाई न पड़े । द्वैत मिटाकर अद्वैत रह जाय । 'मैं' और 'इष्टदेव' दो अलग वस्तु न रहकर एक ही सत्ता हो जावें ।

(७) ध्यान में रुचि, एकाग्रता और तदाकारता बढ़ाइए और मन ही मन इन मंत्रों का जप कीजिए ।

-मैं महत्ता की ओर बढ़ रहा हूँ ।
-मैं महत्व प्राप्त कर रहा हूँ ।
-मैं अपनी शक्तियों को महान् बना रहा हूँ ।
-मेरा बल, वैभव और ज्ञान उन्नत हो रहा है ।
-मैं महान् हूँ, मेरी सत्ता महान् है ।

समाधि

ध्यान के प्रकरण में जो अभ्यास बताया गया है, वह मनोनिग्रह का एक साधन है । आप साधन को उद्देश्य मान बैठने की गलती न कर बैठें । कुआँ इसलिए खोदते हैं कि पानी प्राप्त हो, परन्तु पानी की बात भूलकर कोई खोदने की क्रिया को ही पकड़ बैठे और सदा खोदने की ही रट लगाये रहे तो उसे बुद्धिमान न कहा जायगा । वेदान्त की मर्यादा में जो ध्यान साधनाऐं बताई जाती हैं, उनमें अनाहत शब्द श्रवण करने, षट्चक्र बेधने, त्रिकुटी में ज्योति का दर्शन करने की साधनाऐं प्रमुख हैं । अन्य मतों वाले भी शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श के अन्तर्गत ही ध्यान-साधनायें बताते हैं । इन अभ्यासों के लिए कुछ थोड़ा सा समय नियत रहता है, हर घड़ी सारे दिन कोई ध्यान नहीं कर सकता । मन की रचना ही इस प्रकार की है कि वह विभिन्नताओं में घूमता रहे तो बलवान रहता है अन्यथा थक कर शिथिल हो जाता है । थके मन से ध्यान भी नहीं हो सकता । इसलिए ध्यान के लिए प्रातः, सायं एक-दो घण्टे या न्यूनाधिक समय लगाने की विधि-व्यवस्था साधकों को बताई जाती है ।

ध्यान का अभ्यास करने से चित्त नियत विषय में पूरी तरह लग जाने की आदत सीखता है । आध्यात्मिक ध्यानों में दुहरा लाभ है । किसी इच्छित विषय में पूरे मनोयोग के साथ लग जाने की कला तो आती ही है, साथ में ध्येयमय आदर्श प्रतिमा का ध्यान करने से वाह्य और आन्तरिक अवयव उसी दिशा में प्रगति करने लगते हैं जिससे लोक और परलोक में सुख-शांति प्राप्त होने के अवसर एकत्रित होते जाते हैं । यह दुहरा लाभ होते हुए भी ध्यान आखिर ध्यान ही है । वह साधन है, लक्ष्य नहीं हो सकता । जिस विधि से भी ध्यान साधना की जाय वह मन में तन्मयता सिखाने के लिए है, उद्देश्य तो दूसरा ही होगा । सधाये हुए मन से कार्य तो कुछ और ही लिया जायगा । लाभ तो कुछ और ही उठाया जायगा । कुआँ खोदने का परिश्रम पानी निकालने के लिए किया जाता है, ध्यान का परिश्रम विकास के लिए, उच्च स्थिति प्राप्त करने के लिए, आत्मा से परमात्मा बनने के लिए किया जाता है ।

इतना सब समझ लेने के पश्चात् पाठकों को राजयोग के आठवें अंग समाधि की ओर बढ़ना चाहिए । जिस प्रकार प्रत्याहार का उत्तरार्द्ध धारणा थी, उसी प्रकार ध्यान का उत्तरार्द्ध समाधि है । ध्यान की पूर्णावस्था का नाम ही समाधि है । जब किसी बात पर भली प्रकार निर्विकल्प रूप से चित्त जम जाता है, तब उस अवस्था को समाधि कहा जाता है ।

समाधि के विषय में जन साधारण में नाना प्रकार की कथा-किम्बदन्तियाँ प्रचलित हैं । अज्ञान के कारण अत्युक्तियों का प्रचलन बढ़ता है, अपरिज्ञात विषय के बारे में लोग नाना प्रकार की कल्पनाऐं गढ़ लेते हैं । भूत और परियों के बारे में बड़ी-बड़ी आश्चर्यजनक बातें कहीं-सुनी जाती हैं, कारण यह है कि वे प्रत्यक्ष नहीं है । इसी प्रकार समाधि का विषय बहुत दिनों से सर्व साधारण के सामने नहीं है, इसलिए तद्विषयक अत्युक्तियाँ भी उसी प्रकार फैल गई हैं जैसे कि भूत या परियों के बारे में । ढोंगी और धूर्तों ने इस ओर और भी गड़बड़ी फैला दी है । हमने देखा है कि कई सज्जन जमीन में गड्ढे खोदकर उसमें बैठ जाते हैं और ऊपर से उस गड्ढे को पटवा कर भीतर बैठे रहते हैं और कई दिन बाद उस गड्ढे में से जीवित निकलते हैं । इस प्रकार की बाजीगरी विभिन्न रूपों में देखी तथा दिखाई जाती है । यह निस्सार बातें हैं । पाठकों को हम आगाह करते हैं कि इन बाजीगरी की बातों से समाधि का कुछ भी संबंध न समझें । हठ योग की समाधियों में जरूर शरीर निश्चेष्ट हो जाता है, कभी कभी रक्त की गति भी बन्द हो जाती है, ऐसा 'इच्छा शक्ति' द्वारा भी हो सकता है ।

कई तमाशा करने वाले रंगमंच पर खड़े होकर इच्छा शक्ति द्वारा नाड़ी की गति बन्द कर देते हैं, क्या इसे समाधि कहा जायगा ? हठयोग की समाधि में भी यह आवश्यक नहीं कि मनुष्य बेहोश हो जाय, निष्प्राण हो जाय । रक्त प्रवाह रुक जाय या और कुछ आश्चर्यजनक बात दिखाई पड़े ।

राजयोग सर्वसाधारण की-जनता की चीज है । यह साधना हर बाल-वृद्ध, गृही-वैरागी को करने के लिए आविष्कारित की गई है । इसमें वही सब है जो नित्य के साधारण जीवन में होता है । बाजीगरी के अलौकिक चमत्कारों की चर्चा भी इसमें नहीं है । राजयोग की समाधि का अभ्यासी न तो बेहोश होगा, न मर जायगा, न पागल हो जायगा, न आसमान में उड़ जायगा, न कुछ और करामात करेगा । प्राकृतिक नियमों के अन्तर्गत ही उसका जीवनक्रम चलेगा पर आत्मोन्नति इतनी अधिक कर लेगा कि उसकी आत्मिक स्थिरता अद्‌भुत एवं आश्चर्यजनक होगी, मनुष्य की चमड़ी में देवता दृष्टिगोचर होगा । राजयोग आपको बाजीगर नहीं आत्म परायण बनाना चाहता है, समाधि लगाकर आप बेहोश नहीं, होशदार बनेंगे । इस साधना से आप मूर्छित नहीं जागृत हो जावेंगे ।

मनुष्य साधारणत: तीन अवस्थाओं में रहता है । जागृति, स्वप्न या सुषुप्ति । इनमें से कोई एक दशा हमेशा रहती है । जागने की अवस्था में शारीरिक और मानसिक कार्य होते हैं, स्वप्न में सोते हुए भी कुछ दृश्य देखा करता है । सुषुप्ति में गहरी नींद आ जाती है, तब कुछ भी सुधि-बुधि नहीं रहती, उस समय दुनियाँदारी के झंझट समाप्त हो जाते हैं । जागृति में थकान आती है, काम करते-करते मनुष्य थकता है, उसकी शक्तियाँ खर्च होती हैं, सो जाने पर वह थकान उतरती है और खर्च हुई शक्तियाँ पुन: प्राप्त हो जाती हैं । सबेरे सब लोग तरोताजा उठते हैं, उस समय शरीर में खूब उत्साह और स्फूर्ति रहती है । काम करने की अपेक्षा सोने में अधिक सुख मिलता है । इससे प्रतीत होता है कि पहली अवस्था की अपेक्षा दूसरी में अधिक सुख है । जगने वाला सोकर प्रसन्न होता है ।

स्वप्न की अपेक्षा सुषुप्ति में अधिक आनन्द है । जिस दिन गहरी नींद आती है, उस दिन तबियत बहुत हलकी हो जाती है । स्वप्न देखते हुए अधूरी नींद में रातभर सोने की अपेक्षा सुधि-बुधि भूलकर गहर-गड्ड नींद में एक-दो घण्टे भी सो जाना अधिक आनन्ददायक होता है । जिन्हें गहरी नींद आती है, वे सदा स्वस्थ रहते हैं । जिस दिन गहरी नींद आती है, लोग खुश होते हुए कहते

हैं आज तो खूब गहरे सोये । निस्संदेह स्वप्न की अपेक्षा सुषुप्ति मजेदार मालूम पड़ती है । पहली दशा की अपेक्षा दूसरी में और दूसरी की अपेक्षा तीसरी में अधिक आनन्द है । उत्तरोत्तर आनन्द की वृद्धि होती जाती है, आगे का हर कदम अधिक सुखकर बनता जाता है ।

इन तीन अवस्थाओं से आगे चलकर एक चौथी अवस्था है, जिसे "तुरीय अवस्था" कहते हैं । इसमें सबसे अधिक आनन्द है । संसार का कोई भी आनन्द तुरीय अवस्था के आनन्द की तुलना नहीं कर सकता । यह सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ सुख है । भाग्यवान् योगी लोगों को ही यह प्राप्त होता है । इस तुरीय अवस्था को ही दूसरे शब्दों में समाधि कहते हैं । समाधि सुख का एक बार जिसने रसास्वादन किया, उसके लिए और सब सुख तुच्छ एवं फीके हो जाते हैं ।

सुषुप्ति अवस्था में मनुष्य बिलकुल सो जाता है । तुरीय अवस्था में शरीर तो नहीं सोता, पर विकारी मन अपनी सारी चंचलता के साथ एक गाढ़ निद्रा में सो जाता है । मैस्मरेजम द्वारा प्रभावित किया हुआ मनुष्य जागते हुए भी एक प्रकार की निद्रा में सोता रहता है, उसकी अपनी बुद्धि काम नहीं करती वरन् प्रयोक्ता के आदेश पर शरीर तथा मस्तिष्क नाचता है । प्रयोक्ता यदि यह आज्ञा करे कि कपड़े उतार कर नंगे हो जाओ तो वह प्रभाव सम्मोहित व्यक्ति बिना अपनी अकल को काम में लाये भरी सभा में नंगा हो जायेगा । यह एक विशिष्ट निद्रा का खेल है जो मैस्मरेजम द्वारा उत्पन्न की गई है । सम्मोहित व्यक्ति का शरीर यद्यपि चलता-फिरता है पर उसकी विचार चेतना गहरी नींद में सोई रहती है । इस प्रकार की एक निद्रा समाधि अवस्था में आती है, वह निद्रा एक बार जब आने लगती है तो फिर प्रायः शेष जीवन उसी में व्यतीत हो जाता है ।

समाधि केवल साधना के समय ही रहती हो सो बात नहीं । आगे चलकर साधक का सारा जीवनक्रम तुरीय अवस्था में ही चलता है । उसकी विचारधारा बहुत ऊँची दार्शनिक ढंग की हो जाती है । संसारी मनुष्य स्वार्थ, लोभ, काम, मोह, शोक, ईर्ष्या, द्वेष की भावनाओं से घिरे रहते हैं, इन्हीं वृत्तियों की प्रेरणा से उनके कार्य होते हैं किन्तु तुरीय अवस्था में गये हुए मनुष्य की यह सारी विकार-वासनाऐं सो जाती हैं, विकारी मन निद्रा में चला जाता है, केवल सतोगुणी उच्च अन्तःकरण जागता और काम करता रहता है । इसलिए जो भी विचार उठते हैं, जो भी निर्णय होते हैं, जो भी कार्य किये जाते हैं, वे सब दार्शनिक बुद्धि से, कर्तव्य भावना से धर्मपूर्वक किये जाते हैं । ऐसा मालूम होता

है मानो दुनियाँदार आदमियों की विचारधारा से हजार योजन ऊँची अपनी विचारधारा है, दुनियाँदार आदमियों की क्रिया पद्धति से लाख योजन ऊँची अपनी कार्य प्रणाली है । जिन बातों में दुनियाँदार आदमी बड़ा सुख मानते हैं, वे उसे तुच्छ प्रतीत होती हैं और संसार जिधर आँख उठाकर भी नहीं देखता वे बातें उसे अत्यन्त महत्वपूर्ण जँचती हैं । ऐसी दशा में दुनियाँ उसे सोई हुई मालूम पड़ती है और दुनियाँ को वह सोया हुआ मालूम पड़ता है । सांसारिक लोगों की भाषा में ''तुरीय अवस्था'' सुषुप्ति से भी गहरी निद्रावस्था समझी जाती है, दुनियाँदारों के दृष्टिकोणों से बिलकुल भिन्न जिसका दृष्टिकोण है, उसे यदि सोता हुआ समझा जाय तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है । भोग-विलास, धन और अहंकार में इठी फिरने वाली दुनियाँ की निगाह में सिद्धांतजीवी, धर्मारूढ़, कर्तव्यपरायण लोग गहरी, अत्यन्त गहरी निद्रा में सोये हुए ही होंगे ।

आप यदि तुरीय अवस्था का, समाधि का रसास्वादन करना चाहते हैं तो विकारी मन को सो जाने दीजिए, उसको उपेक्षित और अपमानित करके दूर हटा दीजिए । उच्च, सात्विक एवं पवित्र अन्त:करण को जगाइए और उसी की आज्ञानुसार अपने विचार एवं कार्यों का निर्माण होने दीजिए । नीच वृत्तियों का प्रवेश आपके अन्दर किसी भी द्वार से न होना चाहिए ।

विकारी मन की कोई भी हलचल आपके निकट दृष्टिगोचर न हो । हर कार्य में पवित्रता, सफाई, ईमानदारी, मुहब्बत, नेक नीयति, उदारता, भलमनसाहत, सेवा का पुट रहना चाहिए । जो भी सोचें, जो करें, इसी दृष्टिकोण से करें, यही अपनी मर्यादा रहे, इस क्षेत्र से बाहर कदम न पड़ने पावें । सात्विक मन का आदेश ही सिर आँखों पर रहे, ईश्वरीय आज्ञाओं के आगे ही अपना सिर झुके । शैतान का कोई भी प्रलोभन आपको कुम्हला न सके, गिरा न सके । व्यवहारिक जीवन की यही समाधि है । आपका शरीर और मस्तिष्क जितने अंशों में इस मर्यादा में आबद्ध हो जाय, समझ लीजिए कि उतने ही अंशों में आपको समाधि प्राप्त हो गई । दिन-दिन अधिक उन्नति करते चलिए, दोषों को अधिक सावधानी से सुधारते रहिए, धीरे-धीरे एक दिन आप पूर्ण समाधि का रसास्वादन करेंगे । जब आपका अन्त:करण सतोगुण से लबालब भर जायगा तो वह अमृत घट से भी अधिक आपको शांतिदायक अनुभव होगा ।

परमात्मा सत्, चित् आनन्द स्वरूप है । अपने को आप सत्यमय, चैतन्य, प्रसन्नचित्त बनाइए, यह बातें जितनी ही बढ़ती हैं, उतना ही परमात्मा का तेज आप में बढ़ता है । जब पूर्ण रूप से यह गुण आप में भर जायेंगे तो आप पूर्ण

रूप से परमात्मा हो जावेंगे । यह परमपद है, इसी को मुक्ति कहते हैं, पूर्ण समाधि, तुरीय अवस्था, ब्रह्म प्राप्ति, प्रभु सान्निध्य यही है । जीव का चरम लक्ष्य यही है, योगी लोग इसी के लिए नाना विधि जप-तप करते हैं । समस्त साधनाऐं इसी लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए बनाई गई हैं ।

मनोनिग्रह का भौतिक लाभ किसी विषय में चित्त को पूर्ण रूप से जुटा देने योग्य बना देना है । समाधि अवस्था तक पहुँचते पहुँचते मन इतना सध जाता है कि उसे जिधर भी लगाया जाय, आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाता है । आत्मिक लाभ समाधि अवस्था को प्राप्त करना है । कुविचार और कुसंस्कारों को दूर करके सद्भाव और सत्कर्म में नियोजित कर देना राजयोग का उद्देश्य है । मनोनिग्रह की प्रक्रिया उसके अन्तर्गत इसी दृष्टि से बताई गई है । सच्ची सम्पदाऐं बाहर नहीं भीतर हैं, सच्चा सुख संसार में नहीं अन्तःकरण में है, इसलिए सब प्रकार सच्चे रूप से सुख-शांति उपलब्ध करने के लिए मनोभूमि को सुधारने और सुसंस्कृत बनाने का प्रयत्न करना होता है, यही मनोनिग्रह है, इस प्रयास की पूर्णता ही राजयोग की समाधि है ।

अभ्यास

(१) प्रतिदिन प्रातःकाल अथवा सायंकाल एकान्त स्थान में शांत चित्त से नेत्र बन्द करके पद्मासन से बैठिए । शरीर और मन को शिथिल कर दीजिए । सब ओर से चित्त हटाकर एकाग्र कीजिए ।

(२) आज्ञा चक्र में समाधि का ध्यान करने के लिए तैयार हूजिए । स्थूल हृदय से २४ अंगुल ऊपर सूक्ष्म हृदय कहा गया है, इसी को हृदय कमल, तृतीय नेत्र, आज्ञा चक्र, त्रिकुटी कहते हैं । दोनों भौओं के बीच में यह स्थान है । आत्मा की राजधानी यही मानी जाती है ।

(३) दिव्य नेत्रों से त्रिकुटी में सूर्य के समान दीप्तमान अँगूठे की बराबर ज्योति का ध्यान कीजिए । आरंभ में यह ज्योति हरे, नीले, पीले, लाल, सुनहरी कई रंगों की तथा मिश्रित रंगों की दृष्टिगोचर होती है, धीरे-धीरे यह रंग हटते जाते हैं और स्वच्छ श्वेत प्रकाश ही शेष रह जाता है ।

(४) इस ज्योति का अपनी आत्मा के रूप में दर्शन कीजिए । इसमें सम्पूर्ण तुच्छताओं से रहित होने तथा सत्-चित् आनन्दमय श्रेष्ठताओं की पूर्णता होने की भावना कीजिए ।

(५) संकल्प कीजिए कि आपकी आत्मा ज्योति स्वरूप, निर्विकार है । शरीर और मन के सारे अवयव अपने औजार मात्र हैं । इन औजारों को अपने से पृथक रखा हुआ अनुभव कीजिए । इन्हें खूब टटोल-टटोल कर देखिए और भले प्रकार भावना कीजिए कि यह आत्मा से पृथक हैं, साधन, औजार तथा परिधान मात्र हैं ।

(६) इन औजारों को अलग रखकर अपने ज्योति स्वरूप में स्थित हूजिए । अपने को अत्यन्त आनन्दमय अमृत से परिपूर्ण अनुभव कीजिए ।

(७) निर्विकार आत्म ज्योति का ध्यान करिए और अनुभव कीजिए यही ज्योति महान् रूप में विश्व व्यापी है । सम्पूर्ण चराचरों में एक ज्योति जगमगा रही है । एक ही परमात्मा की किरणें विभिन्न पात्रों पर प्रतिबिम्बित हो रही हैं । सर्वत्र एक ही सत्ता है, अनेक में एक ही तत्व व्याप्त हो रहा है ।

(८) इन भावनाओं के साथ मन ही मन निम्न मंत्रों का जप करते जाइए ।

-मैं अविनाशी हूँ । शरीर मेरा परिधान मात्र है ।

-मैं निर्विकार हूं । मन मेरा औजार मात्र है ।

-मैं एक हूँ । अनेकता कौतुक मात्र है ।

-मैं निर्लिप्त हूँ । गुण, कर्म, स्वभाव मेरा वैभव मात्र है ।

-मैं महान् हूँ । लघुता मेरा अज्ञान मात्र है ।

-मैं सत्य हूँ, चैतन्य हूँ, आनन्द हूँ ।

-मैं हूँ, केवल मात्र मैं ही हूँ ।

मुद्रक : युग निर्माण प्रेस, मथुरा